समकालीन भारत में महिला सशक्तिकरण

डॉ. राजेश शुक्ला
विभागाध्यक्ष, समाज शास्त्र
दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

किसी भी समाज की प्रगति एवं विकास में महिलाओं एवं पुरूषों की समान भूमिका होती है। आज सामाजिक- राजनीतिक- आर्थिक प्रवृत्तियों एवं समस्याओं बल्कि वास्तव में मानव व्यवहार तथा मानव संबंधों के प्राय: प्रत्येक पक्ष को समझने के लिए विशिष्ट दृष्टिकोण का अध्ययन तथा उसकी जानकारी सबसे विशिष्ट और अनिवार्य आवश्यकता है। भारत सांस्कृतिक मिश्रण और अन्त: विरोधों से भरा हुआ है, यहां क्षेत्रीय विभिन्नताएं बहुत अधिक है, इसलिए जो बात यहां की शहरी क्षेत्रों में लागू हो सकती है, जरूरी नहीं कि वह ग्रामीण क्षेत्रों में भी लागू हो सकती है। चूंकि शहरों में भी समाज के विभिन्न वर्गो के दृष्टिकोणों और उन दृष्टिकोणों में होने वाले परिवर्तन में अन्तर हो सकता है , इसलिए भारतीय समाज का व्यवस्थित एवं व्यवहारिक अध्ययन महिलाओं की स्थितियों एवं दृष्टिकोणों के अध्ययन के बिना संभव नहीं है।

आज की दुनिया अपेक्षाकृत तीव्र गति से बदलती हुई दुनिया है और यह परिवर्तन विभिन्न दिशाओं में हो रहा है । सामाजिक दृष्टि से देखें तो भारत में स्वतंत्रता के पश्चात होने वाले सबसे अधिक मौलिक और उल्लेखनीय परिवर्तनों में से एक है नारी समाज की आपेक्षिक मुक्ति, घरो की चारदीवारियों से निकलकर उसका बाहरी दुनिया की गतिविधियों में शामिल होना। शहरों के उच्च और मध्यम आर्थिक स्थिति की शिक्षित कामकाजी महिलाओं का उदीयमान वर्ग हमारे समाज की अपेक्षाकृत एक नया पहलू है, जिसकी ओर सामान्य लोगों और विद्वानों दोनों का ध्यान आकृष्ट हो रहा है। इस वर्ग का उदय वास्तव में उन महत्वपूर्ण परिवर्तनों का संकेत है, जो हमारे देश के सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक कानूनी जीवन में घटित हो रहे हैं।

भारतीय समाज में व्यापक स्तर पर महिलाओं की दो वर्ग या श्रेणियां हैं - एक तो शिक्षित अभिजात्य एवं विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग है, जो बहुसंख्यक है। महिलाएं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं क्षेत्रीय भाषायी पृष्ठभूमि के आधार पर विभिन्न वर्गो में विभक्त है जो देश की लगभग आधी जनसंख्या है। शिक्षा का प्रसार महिलाओं को समानता एवं अधिकारों से जोड़ने का सर्वश्रेष्ठ आधार है, सन 1978 में विश्व बैंक के तत्कालीन अध्यक्ष राबर्ट मैकानामारा ने कहा है कि सामाजिक विकास के लिए जरूरी है कि प्रत्येक लड़की को स्कूल में जाना चाहिए, इससे जनसंख्या, पारिवारिक आय, स्वास्थ्य एवं शक्ति (क्षमता) का उपयोग आदि तात्कालिक परिवर्तन होंगे।

हाबहाउस ने अपनी पुस्तक मारल्स इन इवोल्यूशन में कहा है स्त्रियों की शिक्षा और समाज में उनकी स्थिति समाज की प्रगति का असंदिग्धसूचक है । कार्ल मार्क्स ने कहा था कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से सामाजिक प्रगति को ठीक-ठीक मापा जा सकता है। (देखिये, लेबर ब्यूरो रिपोर्ट, 1953 पृ.1) स्वीडन के समाजशास्त्री गुस्ताफ गीगर ने लिखा है किसी समाज में स्त्रियों की जो स्थिति है, उससे उस समाज के विकास को सही सही मापा जा सकता है (देखिए सुलेरांट, 1971, पृ.14), किसी समाज के सामाजिक जीवन के अस्तित्व तथा संगठन के लिए ही नही वरन वह ठीक से अपने कार्यों का सम्पादन भी करता रहे, इसके लिए तथा जिनसे समाज निर्मित होता है उन मानव- प्राणियों की सृष्टि तथा उनके रक्षण एवं उनकी वंश श्रृंखला को कायम रखने के लिए भी जो मौलिक एवं सारभूत संस्थाओं बनी है, उनमें परिवार, शिक्षा, विवाह हमारी प्राचीनतम और अत्यन्त मौलिक तथा आधारभूत संस्थाओं में से है। इन संस्थाओं पर सामान्यत: किसी समाज के सामाजिक- राजनीतिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव भी पड़ता है । महिलाओं और पुरूषों, दोनों के ही जीवन पर उक्त संस्थाओं के साथ ही व्यवसाय, रोजगार, समानता, स्वतंत्रता एवं अधिकार का प्रभाव सदैव इतना स्थायी रहा है, कि इन संस्थाओं के प्रति उनका जो रूख और दृष्टिकोण रहा है, वह किसी भी समाज की वर्तमान और भावी प्रवृत्तियों के सूचक का काम कर सकता है।

किसी भी महिला या महिलाओं के प्रति व्यक्ति या समाज का दृष्टिकोण क्या है, इसका उस महिला या महिलाओं के प्रकट या अप्रकट व्यवहार पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है , क्योंकि किसी भी व्यक्ति के दृष्टिकोण उनके वैयक्तिक जीवन के केन्द्रभूत तत्व होते हैं तथा उनके विचारों, भावनाओं, मनोवृत्तियों और व्यवहार को निर्धारित करने में उनकी बहुत बड़ी भूमिका होती है, इसलिए यदि हमें महिलाओं की वर्तमान स्थिति, उसके प्रति उनका दृष्टिकोण,

सामाजिक परिवर्तन का या समाज किस दिशा में बढ़ रहा है, इस बात का अध्ययन करना है तो व्यक्ति समूहों के दृष्टिकोण का और इससे भी अधिक उनके दृष्टिकोण में हो रहे परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त करना हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

लगभग पचास वर्षों में भारत में जो बहुस्तरीय व्यापक सामाजिक परिवर्तन हुए हैं, उससे यहां की पूरी आबादी प्रभावित हुई है, किन्तु समाज के कुछ वर्गों पर उनका असर अन्य वर्गों की तुलना में अधिक हुआ है। शहरों में रहने वाले मध्यम आर्थिक स्थिति के शिक्षित लोगों के बीच इन परिवर्तनों ने पुरूषों की तुलना में महिलाओं को अधिक प्रभावित किया है। विशेषकर स्वतंत्रता के बाद की बदलती हुई सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हुई है और इन नई परिस्थितियों के फलस्वरूप इनके लिए अपनी स्वतंत्रता, समानता एवं अधिकारों की अभिव्यक्ति और उसकी प्रतिष्ठा के निरन्तर नए रास्ते खुल गए हैं । इस बात की पूरी सम्भावना है कि उन्हें जो नयी राजनीतिक- कानूनी सुविधाएं प्रदान की गई है, वे तथा उपर्युक्त बदलती हुई परिस्थितियों, उनकी भावनाओं, विचारों और विवाह, प्रेम तथा यौन सम्बन्ध आदि जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति उनके दृष्टिकोणों को प्रभावित करे।

स्वतंत्रता के बाद से जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण हुए हैं उनमें से एक है परम्परावादी व्यवस्था से महिलाओं की मुक्ति, जो उन्हें विभिन्न राजनीतिक- कानूनी एवं सामाजिक आर्थिक अधिकार तथा सुविधाएं प्रदान किये जाने, अधिकाधिक संख्या में उनके शिक्षा ग्रहण करने तथा मध्य आर्थिक स्थिति तथा उच्च वर्गों की महिलाओं के कैसे आर्थिक लाभ वाले विभिन्न व्यवसायों में प्रवेश करने का परिणाम है कि जिन पर अभी तक पुरूषों की प्रभुत्वशाली भूमिका थी। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक- आर्थिक परिवर्तन के साथ भारत के शहरों में रहने वाली शिक्षित महिलाओं ने अपने लिए एक नयी प्रस्थिति और नयी भूमिका प्राप्त कर ली है। लीवरमान जैसे समाजशास्त्रियों के अनुसार भूमिका में परिवर्तन के साथ व्यक्ति के दायित्वों में परिवर्तन आया है और साथ ही उसके व्यवहार और कार्यों में भी परिवर्तन आया है, जिसका प्रभाव उसके दृष्टिकोणों पर पड़ता है (लीबरमान 1965, पृ. 285-402) इसलिए महिलाओं विशेषकर शिक्षित कार्यशील महिलाओं के जीवन में नई भूमिकाएं जुड़ जाने से उनके दृष्टिकोणों में समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षा बहुत अधिक परिवर्तन आ सकता है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था आज पारम्परिक प्रतिमानों एवं आधुनिक मूल्यों के मध्य द्वन्द्वात्मक स्थिति के कारण संक्रमणकाल से गुजर रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात महिलाओं ने शिक्षा, जागरूकता, रोजगार एवं प्रस्थिति आदि क्षेत्रों में निरन्तर प्रगति की है । यही कारण है कि वर्तमान समय में नारीवादी दृष्टिकोण एवं आन्दोलन भी समय-समय पर प्रकट होते रहे हैं। अत: समकालीन भारतीय समाज में महिलाओं के विभिन्न पक्षों का तथ्यात्मक एवं व्यवहारिक अध्ययन आज के समय एवं समाज के स्वरूप को समझने के लिए प्रासंगिक है।

हौट (1930, 1946 और 1969), मर्चेन्ट (1935), कापड़िया (1954, 1955, 1958 और 1959), देसाई (1957), टण्डन (1959), कृष्ण मूर्ति (1970), त्रिपाठी (1967), प्रमिला कपूर (1960, 1970 और 1973) आदि के विभिन्न अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है -विशेषकर अपने स्तर तथा विवाह एवं परिवार संबंधी दृष्टिकोणों में । लिफ्टन (1965), जान्सटन (1968) और स्मिथ तथा हार्डवुड (1966) जैसे विद्वानों के अध्ययनों से पता चलता है कि अनेक देशों में व्यापार तथा अन्य दूसरे असाधारण व्यवसायों में मध्य तथा उच्च वर्ग का महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही है ।

महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका में परिवर्तन

19 वीं शताब्दी से ही महिलाओं की भूमिका और उनकी प्रस्थिति को सीमित करने वाली सामाजिक अक्षमताओं के विरोध में कानून बनने आरंभ हुए । स्वतंत्रता के पश्चात न्याय, स्वतंत्रता, समानता को बढ़ावा देने की संवैधानिक प्रतिबद्धता हुई । स्वतंत्रता के पश्चात कई प्रकार के ऐसे कानून लागू किए गए जो सामाजिक जीवन से संबंधित संवैधानिक संरक्षाओं के सिद्धांतों को लागू करने के प्रयास थे। विवाह एवं विरासत से संबंधित कानूनों में सुधार, श्रम कानूनों में मानवीय स्थितियों को सुधारने के कानून, प्रभाव से संबंधित लाभ एवं श्रमिकों के कल्याण हेतु बनाई गई योजनाएं ऐसे कार्यक्रम थे जिनका उद्देश्य महिलाओं की निम्न स्थिति में योगदान देने वाली अक्षमताओं को समाप्त करता था।

नियोजित सामाजिक- आर्थिक विकास के कार्यक्रमों और नीतियों ने महिलाओं को विकास की सामाजिक- आर्थिक प्रक्रिया में अधिक जिम्मेदारी पूर्वक सकारात्मक सहभागिता के लिए अधिक अवसर प्रदान किए। नियोजन के सिद्धान्त को स्वीकार करने से यह स्पष्ट हुआ कि अगर विकास को तीव्र गति देनी है तो अर्थव्यवस्था जनसंख्या के आधे भाग के सक्षम योगदान को नकार नहीं सकती। इसलिए महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में शामिल करने के प्रयास किए गए।

1970 के दशक से नियोजन की प्रक्रिया में महिलाओं की हिस्सेदारी पर विशेष ध्यान देने के लिए दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। यू.एन.ओ. द्वारा 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित करने एवं 1975 से 85 तक के दशक को महिला दशक घोषित करना महिलाओं से संबंधित विषयों में एक महत्वपूर्ण कदम था। सारे विश्व का ध्यान महिलाओं की समस्याओं,

आवश्यकताओं, क्षमताओं की तरफ आकर्षित किया गया था। हर वाद विवादों एवं शोधों द्वारा समाज में महिलाओं की भूमिका का पुन:निरीक्षण किया गया और यह मांग की गई कि ऐसे कार्यक्रम बनाए जाएं जिसमें महिलाएं अपनी क्षमता का उपयोग करके समाज में उचित योगदान दे सके। कई विषयों में नए कार्यक्रम बनाए गए परंतु ये कार्यक्रम राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सरकार एवं गैर सरकारी अभिकरणों के द्वारा विशेषतया स्वास्थ्य शिक्षा एवं रोजगार आदि पर केन्द्रित थे।

दूसरा महत्वपूर्ण कारक विकासवादी सिद्धान्त में महत्वपूर्ण परिवर्तन थे, जिसने विकास में महिलाओं की सहभागिता को केन्द्र बिन्दु बनाया। यह पाए जाने पर कि विकास की नियोजित प्रक्रिया के लाभ स्वयं ही शक्तिहीन एवं गरीब वर्गों तक नहीं पहुंचते। इसलिए समाज के शोषित वर्गों को लाभ पहुंचाने के लिए विशेष प्रयास किए गये। वृद्धि की गति को बढ़ाने के प्रयासों के साथ-साथ विशेष रूप से लक्षित कार्यक्रमों को सोचा गया और क्रियान्वित किया गया। महिलाओं को इस प्रकार का शोषित समूह माना जिस पर पूर्ण ध्यान देने की जरूरत थी। शिक्षा, शैक्षणिक, व्यावसायिक प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सेवाओं, परिवार नियोजन, कल्याणकारी योजनाओं इत्यादि द्वारा महिलाओं की मानसिक क्षमताओं को बढ़ाए एवं उनके जीवन की परिस्थितियों को सुधारे जाने के प्रयास किए गए।

लेकिन महिलाओं की विभिन्न श्रेणियों पर प्रत्येक क्षेत्र में किए गए विकासवादी प्रयासों का इच्छित एवं एक समान प्रभाव नही पड़ा है। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत में महिलाएं एक समरूप श्रेणी नहीं बनाती है। महिलाओं के समूह एक दूसरे से न केवल शारीरिक एवं जनसांख्यिकी विशेषताओं में अपितु धर्म, जाति, वर्ग क्षेत्र आदि कारकों द्वारा प्रभावित व्यवहारों में भिन्न भिन्न है। केवल कुछ उच्च एवं मध्य जाति तथा वर्गों के कुछ भागों की महिलाएं, इन कार्यक्रमों द्वारा लाभान्वित हुई है। बहुत बड़ी संख्या में भारतीय महिलाएं अभी तक शोषण एवं भेदभाव की नीति की शिकार है एवं वंचित जीवन व्यतीत कर रही हैं।

विकासवादी कार्यक्रम की गलत सीमित सोच एवं क्रियान्वयन द्वारा उत्पन्न सीमितताएं इच्छित दिशा की प्रगति में समस्याएं उत्पन्न करती है। इन सीमाओं के अलावा कई और समस्याएं भी उत्पन्न होती है । क्योंकि संविधान द्वारा उद्देश्य की सामाजिक स्वीकृति समय और समूह के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। महिलाएं, घरेलू महिला, पत्नी एवं मां मानी जाती है और यह महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करती है। शिक्षित एवं कुशल महिलाओं में भी घर को संवारने एवं बाहर भविष्य बनाने के समय संघर्ष होता है । महिलाओं के दायरे बढ़ गए हैं, परंतु जीवन में उनके लिए सम्भावनाओं और विकल्प अभी भी सीमित है।

References

1. Desai, Neera - Women in modern India, Vora and Co. Publishers, Pvt. Ltd. Bombay, 1957.
2. Kapoor, Promila - Marriage and the working women in India, Vikas Publications Delhi, 1970.
3. Kapoor Rama - Role confliet among employed house, wifes, Indian journal of Industrial Relations, Vol-1, No. 5, July, 1969.
4. Leela Laxman - Professions for women, Social welfare Vol-1, No. 12, 1965.
5. Ramchandran- Attitudes of women in part time employment' Tata Institute of Social Research Bombay, 1964.
6. Narayan, Vatsala - India, Women in the modern world, The free press, Newyork, 1967.
7. Ross, A.D. - The Hindu family in its urban setting, Oxford University Press, Bombay, 1961.
8. Sengupta Padmini - Women workers in India, Asia Publishing House, Bombay , 1960.
9. जी.आर. मदन, परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2007.